शिक्षकों की तैयारी

पवन सिन्हा*

शिक्षक होना एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है, महज़ एक पद नहीं है, महज़ एक नौकरी नहीं है, महज़ एक 'पार्ट टाइम बिज़नेस' भी नहीं है। देश भर के अनेक स्कूलों और उन स्कूलों के अनेक बच्चों से मेरा परिचय रहता है। मैं उन सभी बच्चों को स्कूली दुनिया के बाहर रखकर भी सोचता हूँ। ऐसा मैं इसलिए भी करता हूँ, क्योंकि मेरे लिए बच्चे महज़ स्कूल के विद्यार्थी नहीं हैं बल्कि वे स्वयं में पूरा एक व्यक्तित्व हैं, एक जीवन हैं और ... और भी बहुत कुछ हैं! इन्हीं बच्चों के जीवन के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षक संवेदनशील हों और अपनी विद्वता में पारंगत हों। विद्वता का संबंध केवल 'ज्ञानवान' होने से नहीं और न ही केवल विषय पर अधिकार से है, बल्कि इसका संबंध अपने ज्ञान के सार्थक प्रयोग से है। यह लेख इसी 'शिक्षकत्व' की पड़ताल करता है।

बच्चों के साथ काम करने के अनुभवों ने यही समझाया है कि शिक्षक बनना आसान नहीं है। 'शिक्षक बनने' और 'शिक्षक होने' में गहरा भेद है। 'शिक्षक होने' में शिक्षकत्व की मौजूदगी का अहसास होता है। यानी शिक्षक होने का अर्थ है — शिक्षक के गुणों को धारण करना जिसे शिक्षकत्व कहा जाता है। इस तरह शिक्षकत्व उन गुणों की ओर संकेत करते हैं जिनके होने से एक प्रभावी शिक्षक का व्यक्तित्व प्राप्त होता है। हालाँकि शिक्षक 'बनाने' के लिए देश भर में 'अनेक' संस्थान हैं जो शिक्षक 'बनाते' हैं। उनके पास 'किसी को' भी शिक्षक बनाने का 'हुनर' है। जबकि मेरी समझ यही कहती है कि शिक्षक बनना सबके वश की बात नहीं है। यह ऐसा कोई हुनर नहीं है जिसे कोई भी हासिल कर सकता है। इसके लिए 'शिक्षकत्व' के कुछ गुण या अभिक्षमता होना आवश्यक है। दरअसल शिक्षक होना एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है, महज़ एक पद नहीं है, महज़ एक नौकरी नहीं है, महज़ एक 'पार्ट टाइम बिज़नेस' भी नहीं है। देश भर के अनेक स्कूलों और उन स्कूलों के अनेक बच्चों से मेरा परिचय रहता है। मैं उन सभी

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली 110021

बच्चों को स्कूली दुनिया के बाहर रखकर भी सोचता हूँ। ऐसा मैं इसलिए भी करता हूँ, क्योंकि मेरे लिए बच्चे महज़ स्कूल के विद्यार्थी नहीं हैं बल्कि वे स्वयं में पूरा एक व्यक्तित्व हैं, एक जीवन हैं और ... और भी बहुत कुछ हैं!

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के आने के बाद से शिक्षकों की ज़िम्मेदारी बढ़ी नहीं है बल्कि 'तय' हुई है। शिक्षा का संबंध बच्चों के सर्वांगीण विकास से है और सर्वांगीण विकास करना बेहद कठिन कार्य है। बच्चों के व्यक्तित्व के मुख्यत: चार आयाम हैं – संज्ञानात्मक (मानसिक), शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक। प्रत्येक आयाम अपने आप में अनेक जटिलताओं को समेटे हुए है। उदाहरण के लिए, अगर संवेगात्मक विकास को ही लें तो इसमें अपेक्षित है कि बच्चों के संवेग स्वस्थ हों और उन संवेगों की अभिव्यक्ति भी स्वस्थ हो। किसी जटिल स्थिति में वे अपना हौंसला और आपा खोए बिना स्थिति को संभाल सकें। अपने भावों को भी संभाल सकें और भावों का उन्नयन कर सकें। किसी प्रतिकूल स्थिति में आक्रामकता और क्रोध से बचे रहें और स्थितियों को उन्हीं की जटिलताओं, पेचीदगियों के साथ स्वीकार करें। हर संवेग की अतिश्यता से बचे रहें और संयत भाव से रह सकें। इस संवेगात्मकता को आगे एक और उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। एक बच्चा जो देखने में बहुत खूबसूरत नहीं है, जिसका रंग बेहद साँवला है— वह बच्चा अकसर अपनी कक्षा में, अपने स्कूल में एक 'दर्शनीय' चीज़ बनकर रह गया है। स्कूल के लगभग सभी बच्चे उसके साँवला रंग की वजह से उसे न जाने क्या-क्या कहकर पुकारते हैं, चिढ़ाते हैं, 'छेड़ते हैं'। उस बच्चे को बहुत गुस्सा आता है, रोना भी आता है, लेकिन फिर भी नहीं रोता — 'लड़के भी कहीं रोते हैं?' उसकी अनअभिव्यक्त सुबकियों को सुना जा सकता है अगर कोई सुनना चाहे तो! वह बच्चों के इस व्यवहार से बेहद क्षुब्ध है, लेकिन अपने मन की व्यथा वह किससे कहे? कौन सुनेगा उसकी बात? जब 'रुलाई या रोना' व्यक्त नहीं होता तो धीरे-धीरे वह 'रुलाई या रोना' उसके अवचेतन में जमा होता जाता है और फिर एक दिन ऐसे संवेग में अभिव्यक्त होता है जिसकी 'चपेट' में वे सभी आते हैं जिन्होंने उसका 'नुकसान' किया है। वह अपनी कक्षा के, स्कूल के बच्चों के साथ मारपीट करता है, उन्हें गाली देता है और उनका सामान कहीं छिपा देता है या फिर इधर-उधर फेंक देता है। जब कोई उसके हाथ नहीं आता तो ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाता है, और रो भी देता है। वह पहले भी 'अकेला' था, अब और भी 'अकेला' हो गया। अब कोई बच्चा उसका दोस्त नहीं था। जिन्होंने उस बच्चे का कुछ भी नहीं बिगाड़ा था, वे उस बच्चे से इसलिए दूर रहने लगे कि पता नहीं कब क्या कह दे? जब बड़े उसके इस तरह के व्यवहार को देखते हैं तो कहते हैं — *'कितना खराब बच्चा है! बिगड़ा हुआ बैल है! पता नहीं इसके माँ-बाप ने इसे कुछ सिखाया भी है या नहीं! पता नहीं आगे जाकर क्या-क्या गदर मचाएगा! अरे, इस छोकरे से तो बचकर ही रहना! पता नहीं कब क्या कर दे?'* आदि, आदि। इस पूरे वृत्तांत से आपको क्या समझ में आया? शायद यही कि सारी गलती बच्चे की है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

क्रोध, मारपीट, गाली-गलौज से दूर रहना चाहिए। सबका सम्मान करना चाहिए और अगर उसे कोई दिक्कत थी तो जाकर अपनी टीचर से, माता-पिता से कहता — सीधे भिड़ने की क्या ज़रूरत थी। उस बच्चे के सारे संवेगों को न जाने क्या हो गया? सारे संवेग ना जाने कहाँ छूमंतर हो गए? रह गई तो सिर्फ़ कड़वाहट और इस कड़वाहट की अनेक भयंकर अभिव्यक्तियाँ! लेकिन यह बच्चा मुझे अनेक चिंताओं में घेर लेता है। वह बच्चा जो अभी-अभी स्कूल में टिकना शुरू ही हुआ था – उसके जीवन के साथ यह घट गया? अब कोई उस बच्चे को कितना भी समझाए – *क्या हुआ अगर तुम्हारा रंग साँवला है तो! साँवले तो कान्हा भी थे। हमें दूसरों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। बस अपने काम से काम रखो। दुनिया क्या कह रही है, बच्चे क्या कह रहे हैं कान पर जूँ भी मत रेंगने दो! इतना गुस्सा और यह गाली-गलौज अच्छी बात नहीं है!* आदि, आदि उस बच्चे को प्रभावित करने में बेअसरदार हैं। बच्चे के साथ जो कुछ घटित हुआ उसने उसके जीवन के, उसके व्यक्तित्व के एक आयाम, संवेगात्मक पक्ष को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया और साथ ही उसके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। अत्यधिक क्रोध और आवेश की स्थिति हमारे सोचने-समझने की शक्ति पर बुरा असर डालती है। हम अपने संवेगों पर अपना नियंत्रण खो बैठते हैं। जब सोचने-विचारने की शक्ति ही नहीं रहेगी तो बच्चे का संज्ञानात्मक विकास कैसे होगा? दोस्त तो तभी छूट गए थे जब उनसे मन-मुटाव हुआ और उसके शिक्षक भी 'किन्हीं' कारणों से किनारा कर चुके थे तो उसका सामाजिक विकास भी खतरे में आ गया। *'बिछड़े सभी बारी-बारी...'* ने उसकी सेहत पर भी बुरा असर डाला। लगातार चिंता, आक्रोश में रहने के कारण उसका स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा। लीजिए साहब, उसका शारीरिक विकास भी अनेक लोगों की नासमझी की भेंट चढ़ गया। हमें समझना होगा कि संवेगों का विकास एक दिन, एक महीने में नहीं होता, बल्कि इसके लिए वर्षों की साधना चाहिए। यह भी समझना होगा कि बीते समय को वापस नहीं लाया जा सकता, भले ही वे एक बच्चे के जीवन का समय ही क्यों न हों। अब एक पक्ष के विकास के अभाव में बच्चे के सर्वांगीण विकास कैसे संभव होगा? अब शिक्षक कैसे कहेंगे कि शिक्षा बच्चों का सर्वांगीण विकास करती है! हम बच्चों का सर्वांगीण विकास करते हैं!

इस पूरी चर्चा से इतना तो तय हो गया होगा कि शिक्षक बनना कितना कठिन है, कितना जटिल है और कितना चुनौतीपूर्ण है! इतना ही जटिल है 'शिक्षा' की अवधारणा को समझना! 'शिक्षा का अर्थ है — बच्चों का सर्वांगीण विकास करना।' मुझे लगता है कि यह महज़ एक सूत्र वाक्य ही बनकर रह गया है! इसकी गंभीरता कहाँ खो गई है, पता ही नहीं चल रहा। जब एक बच्चा स्कूल आता है तो उसके पूरे व्यक्तित्व की ज़िम्मेदारी शिक्षक/शिक्षकों पर होती है। शिक्षा की अवधारणा में भी बच्चों को उनकी समग्रता में देखा गया है। समग्रता का अर्थ केवल विषयों की किताबें पढ़ा देना भर नहीं है, बल्कि उन्हें एक ऐसे नागरिक के रूप में भी विकसित करना है, जो अंतत: समाज और राष्ट्र का निर्माण

कर सकें। एक ऐसे मनुष्य के रूप में विकसित करना है, जो जीवन की सार्थकता को चरितार्थ कर सके। बच्चों की शिक्षा के साथ ही शिक्षकों की शिक्षा का भी सवाल साथ ही जुड़ा है। जिन कंधों पर बच्चों के सर्वांगीण विकास की ज़िम्मेदारी है, स्वयं उनका सर्वांगीण विकास हुआ है? क्या उनका इस रूप में विकास और प्रशिक्षण हुआ है जिससे वे बच्चों की शिक्षा और उनके जीवन के साथ न्याय कर पाएँ? क्या शिक्षक स्वयं इतने काबिल हैं, दक्ष हैं, हुनरमंद हैं कि वे बच्चों को काबिल बना सकें, उन्हें हुनरमंद बना सकें? इन सब सवालों के जवाब हमें ही खोजने होंगे और इस खोजपूर्ण यात्रा में जोखिम बहुत हैं। जोखिम इसलिए क्योंकि जब आप और हम सवाल उठाएँगे तो किसी न किसी को तो जवाब देना ही होगा। और आपके और हमारे समाज में सवाल पूछने की आदत तो सभी में है लेकिन 'जवाब' देने की आदत नहीं, क्योंकि सवाल का जवाब देने के लिए दो चीज़ों का होना अत्यंत आवश्यक है— सुनने का हौंसला और ईमानदारी भरा जवाब!

लिहाज़ा, इतना तो तय रहा कि बच्चों के सर्वांगीण विकास की ज़िम्मेदारी निभाने के लिए नियुक्त शिक्षकों का स्वयं में सक्षम होना ज़रूरी है। लेकिन शिक्षकों की काबलियत के परीक्षा-परिणामों को देखें तो पता चलता है कि शिक्षकों को जो शिक्षा-शास्त्र यानी पैडागॉजी आत्मसात् होनी चाहिए, जिन विषयों की जानकारी होनी चाहिए, वे उसी में अनुत्तीर्ण हो रहे हैं। आँकड़ों को उठाकर देखें तो साफ़-साफ़ पता चलता है कि शिक्षकों का 'रिपोर्ट कार्ड' अच्छा नहीं है। और ये वे शिक्षक हैं जो बच्चों का 'रिपोर्ट कार्ड' बनाएँगे। क्या ऐसे शिक्षक यह काम करने के हकदार हैं? संभवत: नहीं! शिक्षकों को, यहाँ तक कि भावी शिक्षकों को भी शिक्षा-शास्त्र की स्पष्ट और गहन समझ होनी चाहिए। यह किसी भी कक्षा, शाला और बच्चों के संदर्भ में बेहद ज़रूरी है। इसी के आधार पर कोई भी शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावी बनाता है और बच्चों के सीखने में मदद करता है। यही वह शिक्षा-शास्त्र है जिसके सहारे वह अपनी भावी योजनाएँ भी बनाता है। यही वह शिक्षा-शास्त्र है जो शिक्षक के समस्त क्रियाकलापों को नियंत्रित करता है। बच्चों के सीखने के तरीके अलग होते हैं इसलिए उन्हें सिखाने के तरीके भी अलग ही होते हैं। एक प्रगतिशील शिक्षा-शास्त्र बच्चों के सीखने से जुड़े मुद्दों की चर्चा करता है। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि हम किसी को भी कुछ भी नहीं सिखा सकते। सीखना बच्चे को स्वयं ही है। हम शिक्षक होने के नाते केवल सीखने के अवसर दे सकते हैं, सीखने में मदद कर सकते हैं और सीखने का अभिप्रेरणादायक माहौल प्रदान कर सकते हैं। लेकिन इतना तो तय है कि सीखना बच्चे को स्वयं ही है।

शिक्षक की ज़िम्मेदारी और नैतिकता इसी में है कि वह बच्चों को सीखने में मदद करे। बच्चों की मदद करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम हर बच्चे को सही-सही जान सकें। तभी तो मदद कर पाएँगे ना! अब क्या शिक्षकों में इतनी योग्यता और धैर्य है कि वे बच्चों के साथ गुणवत्तापरक समय बिता सकें। उनकी विभिन्न गतिविधियों का वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकन कर सकें। उन सभी ब्यौरों को दर्ज कर

सकें जो किसी बच्चे को उसकी संपूर्णता में समझने में मदद करता है। न तो धैर्य है और न ही योग्यता! बच्चे स्वभावत: सीखने-जानने को उत्सुक रहते हैं। उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो उनकी जिज्ञासाओं को शांत कर सके और साथ ही उन्हें कुछ और खोजने, जानने की प्रेरणा दे सके। क्या हमारे शिक्षक हैं ऐसे? संभवत: नहीं। हाँ, सारे शिक्षक ही ऐसे हों, यह ज़रूरी नहीं है लेकिन ऐसे शिक्षकों की तादाद बहुत कम है जो वास्तव में शिक्षक हैं, जो बच्चों के मन को बहुत अच्छी तरह से पढ़ना जानते हैं, उन्हें प्यार देना जानते हैं, उनके साथ धैर्य बरतते हैं। जो शिक्षक हैं उन्हें इस बात की जल्दी होती है कि किसी तरह बस 'सिलेबस' पूरा हो जाए। जो शिक्षक बनने की 'कतार' में हैं, उन्हें इस बात की जल्दी है कि बस किसी तरह 'बिना प्रशिक्षण संस्थान जाए और बिना प्रशिक्षण के ही' उनके शिक्षक बनने की रीति पूरी हो जाए। पढ़ने और चीज़ों को समझने का धैर्य नहीं है उनमें और वे चाहते हैं बस किसी तरह उन्हें 'शिक्षक होने का प्रमाण-पत्र' मिल जाए। ऐसा नहीं है कि यह 'बेसब्रापन' केवल भावी शिक्षकों में है बल्कि बहुत सारे शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों में भी है। इनमें निजी संस्थानों का स्थान सर्वोपरि है। जिसके पास थोड़ा बहुत पैसा आता है वह बिजनेस की तरह केवल दो ही चीज़ों को देखता है — बच्चों की शिक्षा और शिक्षकों की शिक्षा, यानी स्कूल और टीचर ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट! ये दोनों ही किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी माने जाते हैं। शिक्षा बच्चों को जीने का सबक देती है और शिक्षक शिक्षा यानी शिक्षक-प्रशिक्षण उस शिक्षा को समझने का सबक देता है। दोनों में से कोई भी कमज़ोर हो तो सब ढह जाएगा, ढह ही रहा है वैसे तो!

आजकल क्या पिछले अनेक वर्षों से जिस तरह से निजी शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों की 'दिन दोगुनी रात चौगुनी' तरक्की हुई है वैसी तरक्की सरकारी संस्थानों के बंद होने या खाली-वीरान होने में हुई है। अब सरकारी बिल्डिंग तो है (हालाँकि कई-कई जगह वह भी दम तोड़ती नज़र आती है) लेकिन वह बिल्डिंग जिस उद्देश्य के साथ बनाई गई थी, जिन भावी शिक्षकों के लिए बनाई गई थी, वे तो निजी संस्थानों की ओर भाग रहे हैं। क्यों? क्योंकि निजी संस्थानों में अंतिम तारीख कभी आती ही नहीं, जब चाहे एडमिशन करवा लो। निजी संस्थानों में कक्षाएँ सुचारू रूप से लगती ही नहीं, क्योंकि कक्षाएँ लगाने का अर्थ है — उन कक्षाओं में पढ़ाने वाले शिक्षक-प्रशिक्षकों को मेहनताना देना। फिर भले ही दिया जाने वाले चैक और वापस लिए जाने वाले कैश में कितना ही अंतर क्यों ना हो? बेरोज़गारी का तो यह आलम है कि जितने मिल जाएँ उतने अच्छे! इसलिए ना तो मेहनत करवाओ और ना ही मेहनताना दो! किस्सा ही खत्म! भावी शिक्षक केवल दो ही बार अपने इन संस्थानों का चेहरा देख पाते हैं — एक बार दाखिला लेते समय और दूसरी बार परीक्षा देते समय। और अगर परीक्षा भी बाहर हुई या परीक्षा और दाखिला भी किसी दूसरे ने निभाया तो एक बार भी संस्थान न जाने का रिकॉर्ड तो बन ही जाता है। उस पर यह शेखी बघारना कि देखो, बिना जाए ही काम हो गया! जो लोग ऐसा काम करते हैं, क्या उन्होंने कभी सोचा

है कि अगर यही उनके शिक्षक होते तो क्या होता? क्या वे उन्हें पसंद कर पाते? बात जब अपने पर आती है तभी हम चेतते हैं। तो इंतज़ार कीजिए, सब कुछ बिगड़ने का, ढह तो रहा ही है!

वैसे यह भी सोचने वाली बात है कि अगर निजी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से 'पासआउट प्रशिक्षणार्थी' उनके स्वयं के बच्चों के स्कूल में ही शिक्षक के पद पर नियुक्त हो जाएँ तो क्या होगा? झेल पाएँगे ऐसे शिक्षकों को अपने बच्चों के लिए? नहीं! सीधे स्कूल मैनेजमेंट से जाकर शिकायत करेंगे कि अच्छे शिक्षक रखो। हम अच्छी-खासी फ़ीस भी तो देते हैं! ऐसा कहते समय वे भूल जाते हैं कि उन्होंने भी ऐसे खराब शिक्षक बनाने की 'दुकान' खोल रखी है। वे जिन बच्चों को पढ़ाएँगे (आखिर पढ़ाएँगे क्या?) उन्हें 'कुछ खास' दे नहीं पाएँगे। इस तरह ये 'दुकानदार' देश के बहुत सारे बच्चों के गुनहगार हैं! और गुनहगार हैं ऐसे निजी संस्थानों को 'दुकान' खोलने की वैधता देने वाली एक और संस्था जिस पर देश के शिक्षकों के प्रशिक्षण की गुणवत्ता की ज़िम्मेदारी है, नैतिक ज़िम्मेदारी! रातों-रात ही एक कोठीनुमा घर एक 'लैस' निजी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान बन जाता है! रातों-रात कमरे बन जाते हैं, लैब बन जाती है, पुस्तकालय बन जाता है, शिक्षक प्रशिक्षक भी आ जाते हैं। सब कुछ रातों रात करने का हुनर रखने वाले ये लोग उन तमाम बच्चों की ज़िंदगी सँवारने का काम करने में पिछड़ क्यों जाते हैं? कहाँ चला जाता है उनका हुनर कि किसी निर्धन और बुनियादी ज़रूरतों से वंचित बच्चों की कुछ मदद ही हो जाए!

ऐसे शिक्षकों की कैसी होगी तैयारी, बच्चों के जीवन को सँवारने की, बच्चों का सर्वांगीण विकास करने की! और अगर सब कुछ छोड़ भी दें तो कैसी होगी, कैसी है उनके स्वयं के सर्वांगीण विकास की तैयारी? शिक्षक अपने शिक्षकत्व को प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं हैं और न ही वे इस बात के लिए भी तैयार हैं कि पढ़ाते-पढ़ाते भी कुछ सीख लें। नहीं जी! उन्हें तो शिक्षक होने, पढ़ाने का 'लाइसेंस' मिल गया, अब क्यों मेहतन की जाए! सरकार करोड़ों रुपया खर्च करती है शिक्षकों के प्रशिक्षण पर, लेकिन उसका असर न तो शिक्षकों के व्यक्तित्व, उनकी शिक्षण प्रणाली में नज़र आता है और न ही हमारी कक्षाओं में, जिनके लिए सारा 'खेल खेला जाता है।' एक तरफ़ से दिया गया प्रशिक्षण दूसरी तरफ़ से बह जाता है। साल-दर-साल शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, फिर भी कुछ बदलाव होता दिखता नहीं है। इसका कारण यह है कि वे शिक्षक अपने सेवा-पूर्व प्रशिक्षण में ही इतना कुछ 'अंट-संट ढोकर' लाए हैं कि उसे खाली किए बिना यानी 'अनलर्न/डीलर्न' किए बिना नई 'लर्निंग' हो ही नहीं सकती। आखिर सीखना तो स्वयं को ही है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण पर यानी 'प्री-सर्विस टीचर एजुकेशन' पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए। यहाँ अगर मज़बूती, ईमानदारी दिखाई तो अंत: सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर इतना निवेश करने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी और कक्षाओं में और बच्चों में परिवर्तन साफ़-साफ़ नज़र आएगा। इसलिए बंद किया जाए उन दुकानों

को जो आपके, हमारे बच्चों के जीवन के साथ खेल रही हैं। आवाज़ उठाई जाए उस संस्थान/संस्थानों के विरुद्ध जो रचनात्मकता की बजाय विनाश की नींव खोद रहा है/रहे हैं।

आज नहीं तो कल, यह विद्रोह का स्वर फूटेगा ही, और तब आपको अफ़सोस न हो कि इस विद्रोह के स्वर में सबसे पहला आपका स्वर क्यों नहीं था! क्यों आपका स्वर शामिल हुए बिना ही इतनी बड़ी क्रांति हो गई? क्यों आप खामोश रहे और ढोते रहे वह सब कुछ जो नहीं ढोना था! बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता और उनके शिक्षकों के प्रशिक्षण, उनके शिक्षकत्व की तैयारी पर निर्भर करता है। इस तैयारी को पुख्ता बनाने की ज़रूरत है। कैसे? यह सोचना आपका काम है!